साहित्य संहिता

Available at http://sahityasamhita.org/

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

उपनिषदों की विचारधारा (आत्मतत्त्व) का विवेचन

डॉ0 योगेन्द्र वरूण शंकर तिवारी

सहा0 आचार्य–संस्कृत,

सर्वेश्वरी पी0जी0 कालेज, इलाहाबाद

भारतवर्ष की ज्ञान परम्परा की सर्वोत्कृष्ट परिणति **'उपनिषद्'** हैं। **उपनिषद्** शब्द **'उप'** एवं **'नि'** उपसर्ग पूर्वक **'षद्लृ'** धातु में **'क्विप्'** प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। 'उप' उपसर्ग का अर्थ समीप है और 'निषद्' का अर्थ है– बैठना अर्थात् शिष्य का गुरू के समीप रहस्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए बैठना। 'षद्लृ' धातु के तीन अर्थ हैं– विशरण (काटना), गति (ज्ञान और गमन) तथा अवसाद (विनाश)। ईशावास्योपनिषद् की भूमिका की निम्न पंक्तियों में तात्वर्थ को प्रकाशित किया गया है– **''उपनिषीदति सर्वानर्थकरं संसार विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति ब्रह्म च गमयति इति उपनिषत्''**[1]।

अर्थात् जो सम्पूर्ण अनर्थों के उत्पादक संसार को नष्ट करती है और सम्पूर्ण संसार की प्रकृति अविद्या को शिथिल करती है, ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है, वह उपनिषद् है। उपनिषद् मुख्यतया ब्रह्म विद्या का द्योतक है, क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षुजनों की संसार–बीजभूता अविद्या नष्ट हो जाती है (विशरण), वह ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है (गति), तथा मनुष्य के गर्भावास आदिक दुःख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं (अवसादन)। आचार्य शंकर उपनिषद् शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं–**''य इमां ब्रह्म विद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरः सरः सन्तः तेषां गर्भ जन्मजरारोगादिवर्गं विनाशयमति परं वा ब्रह्म गमयति, अविद्यासंसारकारणं चात्यन्तमव सादयति विनाशयति, इत्युपनिषद् उपनिपूर्वस्य सदेरेवमर्थसंस्मरणात्''** [2] । अर्थात् जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक आत्मभाव से ब्रह्म विद्या को प्राप्त करते हैं उनके गर्भ–जन्म–जरा–रोगादि का जो नाश करती है, जो ब्रह्म का साक्षात्कार करती है एवं संसार के कारणभूत अविद्या को नष्ट करती है, वह उपनिषद् है। उपनिषदों के लिए प्रायः वेदान्त शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

वैदिक साहित्य के चार भाग हैं– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् जो वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग अर्थात् चरम परिणिति है। वैदिक साहित्य का या चरम परिणिति होने से उपनिषद् वेदान्त भी कहे जाते हैं, क्योंकि उनमें वेदों का अन्तिम ध्येय 'ब्रह्म' का निरूपण है। उपनिषद् गौणतया ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थ विशेष का भी बोधक है अर्थात उपनिषद् वह साहित्य है

[1] - ईशा0उप0 भूमिका
[2] - कठोपनिषद् भूमिका।

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

जिसमें ब्रह्म के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपाय, जीव और जगत् का रहस्योद्घाटन तथा आत्मा आदि गम्भीर विषयों का विस्तारपूर्वक निरूपण और विवेचन है।

प्रत्येक वेद की संहिताएँ ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भिन्न–भिन्न होते है। ऐसा कहा जाता है कि चारों वेदों के एक सहस्त्र एक सौ अस्सी (1180) उपनिषद् हैं। मूल उपनिषदों की संख्या में पर्याप्त मतभेद है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार 208 उपनिषद् हैं। आचार्य शंकर ने जिन दश उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है वे प्राचीनतम एवं प्रामाणिक माने जाते हैं। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार उनके नाम और क्रम इस प्रकार है–

ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य–तित्तिरः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश।।

उपनिषदों द्वारा सकल मानव जाति के कल्याण की प्रार्थना की गयी है। प्रायः समस्त उपनिषदों में आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन वर्णित है। गीता तथा मोक्ष धर्मों का भी तात्पर्य इसी में है। अतएव आत्मा के अनेकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा अशुद्धत्व और पापयुक्तत्व आदि को ही लेकर सामान्य लोगों की बुद्धि से सिद्ध होने वाले आत्मा के कर्मों का विधान किया गया है।

ईशावास्योपनिषद् स्वरूप याथात्म्य का प्रकाश करके आत्मा के स्वाभाविक अज्ञान को निवृत्त करते हुए संसार के शोकमोहादि धर्मों के विच्छेद के साधनभूत आत्मैकत्व विज्ञान को उत्पन्न करता हैं। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार आत्मा का स्वरूप विरोधी स्वभाव से युक्त है। वह ध्रुव तथा निश्चल है और मन से भी अधिक वेगशाली है। आत्मा का यह स्वभाव आत्मा के निरूपाधिक तथा सोपाधिक रूप से उपपन्न होता है। आत्मा निरूपाधिक रूप से एक,ध्रुव तथा अविचाली है। उसके स्वरूप में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है किन्तु वही आत्मा सोपाधिक रूप से अन्तः करण के संकल्प विकल्पात्मिका उपाधि का अनुसरण करके मन से भी अधिक वेगशाली हो जाता है।

अनेजदेकं मनसो जवीयों नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठन् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।[3]

आत्मतत्त्व चलता है और नहीं भी चलता है अर्थात् स्वयं अचला रहकर भी वह चलता हुआ सा प्रतीत होता है। वह दूर है अर्थात् अज्ञानी जीवों द्वारा सैकड़ों–करोड़ों वर्षों में भी वह प्राप्त नहीं किया जा सकता अतः दूर सा प्रतीत होता है किन्तु विद्वानों की आत्मा होने के कारण वह अत्यन्त समीप भी है। वह आकाश के समान व्यापक होने के कारण नाम रूपक्रियात्मक इस सम्पूर्ण जगत् के बाहर तथा सूक्ष्म होने के कारण इसके भीतर है।

''तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः''।।[4]

[3] - ईशावास्योपनिषद् 04

साहित्य संहिता
Available at http://sahityasamhita.org/
ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

केनोपनिषद् आत्मा के ब्रह्म और आभ्यन्तरिक अथवा मनोवैज्ञानिक और सृष्टि विधान–शास्त्र सम्मत दोनों प्रकार के प्रमाणों का भेद प्रदर्शित करता है। इसमें विविध इन्द्रिय–व्यापारों के प्रेरक के स्वरूप में आत्मा अस्वित्व का मनोवैज्ञानिक विवेचना मिलता है। केनोपनिषद् आत्मा से ब्रह्म की अभिन्नता का कथन करता है। इसके अनुसार सभी प्रमेय वस्तुओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– विदित और अविदित, किन्तु ब्रह्म एक ऐसा पदार्थ है जो इन दोनों श्रेणियों से भिन्न है– **'अन्यदेवत द्विदितादथो अविदितादधि'** । आत्मा से भिन्न कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो विदित तथा अविदित से भी भिन्न हो, अतः आत्मा ही ब्रह्म है। इस अर्थ का समर्थन अन्य अनेक श्रुतियों से होता है– **अयमात्मा ब्रह्म[5], य आत्माऽपहतपाप्मा[6], यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म[7], य आत्मा सर्वान्तरः[8]** ये सभी श्रुतियाँ केनोपनिषद् के ही समान ब्रह्म को आत्मा से अभिन्न बतलाती हैं।

मुण्डकोननिषद् में आत्मतत्व के विवेचन के सन्दर्भ में कहा गया है कि यह आत्मा प्रवचन के द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है, मेधा के द्वारा भी प्राप्त होने के योग्य नहीं है, वेद–शास्त्र इत्यादि के श्रवण से भी आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है अपितु जिस आत्मा का यह साधक वरण कर लेता है उस वरण के द्वारा वह आत्मा प्राप्त होने योग्य है अर्थात् आत्मसाक्षात्कार उसे होता है जिसे उसको जानने की उत्कट अभिलाषा है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस् तस्यैव आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।[9]

कठोपनिषद् के अनुसार आत्मा के दो स्वरूप हैं– जीवात्मा तथा परमात्मा ये दोनों शरीर के सर्वोत्तम स्थान हृदया–काश में निवास करते हुए सत्य का पान करते हैं। अर्थात् शुभकर्मों के अवश्यम्भावी फल का भोग करते हैं। ये दोनों छाया और धूप के समान हैं। जीवात्मा छाया के समान स्वल्प प्रकाश युक्त अथवा अल्पज्ञ है और परमात्मा धूप के सदृश पूर्ण प्रकाशयुक्त सर्वज्ञ है। जिस प्रकार धूप के प्रकाश में ही छाया का अस्तित्व रहता है, उसी प्रकार परमात्मा के अस्तित्व के साथ जीवात्मा का भी अस्तित्व है। आत्मा जन्म–मरण आदि से रहित है। न यह उत्पन्न होता है न मरता है।[10]

अर्थात् (नित्य चैतन्य–स्वरूप) यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। न तो किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ अन्य वस्तु का कार्य हुआ है। अजन्मा, नित्य,

---

[4] - ईशा0..... 05
[5]- मा0 उप0–2
[6] - छा0उप0– 8/7/7
[7] - बृह0उप0–3/4/5
[8] - बृह0उप0–3/4/5
[9] - मुण्ड0उप0– 3/2/3
[10] - न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन् बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।–कठ0–1/2/18

साहित्य संहिता

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

Available at http://sahityasamhita.org/

क्षयरहित तथा पुरातन यह आत्मा शरीर के मारे जाने पर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है। यदि मारने वाला आत्मा को मारने के लिए सोचता है और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है तो वे दोनों ही नहीं जानते कि वस्तुतः न यह मारता है और न मारा जाता है। यह अणु से भी अणुतर और महान् से भी महत्तर आत्मा प्राणी की हृदय रूपी गुहा में अवस्थित है। निष्काम पुरूष इन्द्रियों की निर्मलता से आत्मा की उस महिमा को देखता है और शोकरहित हो जाता है।

अणोरणीयान्महतो महीया–
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीत शोको
धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।[11]

ईशावास्योपनिषद् की ही तरह कठोपनिषद् में भी आत्मा को परस्पर विरोधी गुणों से युक्त बताया गया है। सर्वव्यापक होने के कारण वह एक स्थान पर स्थित होते हुए भी सर्वत्र गमन करता है। सोते हुए होने पर भी गतिशील है। आनन्दस्वरूप होने के कारण 'मद' है तथा इन्द्रियजन्य हर्ष के न होने के कारण **'अमद'**[12] है। परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा महान् से भी महान् है– **''अणोरणीयान् महतोमहीयान्''**[13] वह नित्य तथा विनाशी शरीरों में शरीररहित रूप से नित्यरूप में स्थित है। **''अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थिम्''**[14]।

कठोपनिषद् में यम ''आत्मा'' को अत्यन्त दुर्लभ बतलाते हैं। आत्माज्ञान की दुर्लभता का वर्णन करते हुए यम नचिकेता से कहते हैं कि जो आत्मा बहुतों को सुनने के लिए भी प्राप्य नहीं है, जिसे सुनते हुए भी बहुत से जान नहीं पाते ऐसे इस आत्मा का निरूपण करने वाला कोई आश्चर्य रूप ही होता है, इसको प्राप्त करने वाला भी कोई निपुण पुरूष ही होता है तथा कुशल आचार्य द्वारा उपदिष्ट ज्ञाता भी आश्चर्य रूप ही होता है–

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लन्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।[15]

क्योंकि तुच्छ या प्राकृत व्यक्ति के द्वारा उपदिष्ट हुआ यह आत्मा अनेकशः चिन्तित विचारित होकर भी अच्छी प्रकार से विज्ञात नहीं हो पाता। किसी अभेददर्शी आचार्य के द्वारा उपदिष्ट इसके

---

[11] - कठोपनिषद्– 1/2/20
[12] - आसीनोदूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
करस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।।
[13] - कठोपनिषद् 1/2/20
[14] - कठोपनिषद् 1/2/22
[15] - कठोपनिषद् 1/2/7

साहित्य संहिता
Available at http://sahityasamhita.org/
ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

विषय में विविध विकल्प अवशिष्ट नहीं रह जाते, क्योंकि यह सूक्ष्म परिमाण वालों से भी सूक्ष्मतर आश्च तर्क से परे है।

वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार प्राणों में बुद्धिवृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योति स्वरूप पुरूष अर्थात् आत्मा है। आत्मा स्वयं ज्योतिः स्वरूप कहा गया है। आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। लोक, देव, ब्राह्मण, क्षत्रिय भूत और जो कुछ भी है, वह सब आत्मा है– **'सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं श्रत्रमिये लोका इमे देवा इमानि भूतानीदँ सर्वं यदयमात्मा'**। आत्मा समस्त भूतों का अधिपति तथा राजा है। आत्मा साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तर है। वह दृष्टि का दृष्टा, श्रुति का श्रोता, मति का मन्ता और विज्ञाति का विज्ञाता है। आत्मा न तो चलती है न ही ध्यान अथवा चिन्तन करती है। आत्मा के दो स्थान हैं–इहलोक तथा परलोक **'तस्य वा एतस्य पुरूषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोक स्थानं च'**[16]।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आत्मा ज्योतिः स्वरूप, सबका अधिपति और अन्तर्यामी है। वह अगृह्म, अशीर्य और अनिर्वचनीय है। वह क्षुधा, पिपाशा्, शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु आदि से परे है। प्रियतम आत्मा के लिए ही अन्य वस्तुएँ प्रिय होती हैं। यह दर्शनीय श्रवणीय, मननीय तथा ध्यान करने योग्य है– **आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रैय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन मत्या विज्ञानेदं सर्वं विदितम्'**[17]। आत्मा को जान लेने पर सबका ज्ञान हो जाता है, अतः आत्मा की ही उपासना कर – **''आत्मेत्येवोपासीत्''**।

।। इति ।।

सन्दर्भ ग्रथ सूची

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति – आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशन – शारदा संस्थान, वाराणसी, पंचमसंस्करण– 1998।
2. केनोपनिषद् – व्याख्याता–पं0श्री जगन्नाथ शास्त्री तैलंगं, प्रकाशक भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण– 2003

[16] - बृहदारण्यकोपनिषद्
[17] - बृहदारण्यकोपनिषद् –2/4/5

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

3. वैदिकसाहित्य का इतिहास – श्री गजाननशास्त्री मुसलगांवकर, प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत संस्थान,वाराणसी, प्रथम संस्करण,वि0संवत्– 2005
4. कठोपनिषद्– व्याख्याता, डॉ0 आधा प्रसाद मिश्र, प्रकाशक –अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद।
5. मुण्डकोननिषद् – व्याख्याता– डॉ0 जियालाल काम्बोज, प्रकाशन विधानिधि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण– 1992
6. ईशावास्योपनिषद् – व्याख्याकार–शिवप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2008
7. ईशावास्योपनिषद् – व्याख्या–डॉ0 शशि तिवारी, प्रकाशक– भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2002
8. ईशादि नौ उपनिषद् – टीका–हरिकृष्णदास गोयन्दका, प्रकाशक– गीता प्रेस गोरखपुर – संस्करण – 2000